बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 236

फसल बीमा सुधार

चार निजी बीमा कंपनियों द्वारा सरकार की प्रमुख फसल बीमा योजना-प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) से बाहर जाने का निर्णय कतई चौंकाने वाला नहीं है। कृषि क्षेत्र में बीमा योजनाएं सन 1970 के दशक के आरंभ से ही अपनाई जाती रही हैं। यह सच है कि इस योजना को ऐसी अन्य योजनाओं की तुलना में अधिक सफलता मिली है लेकिन यह भी कुछ ऐसी कमियों की शिकार है जिनके चलते यह न बीमाकर्ताओं के लिए आकर्षक रह गई और न ही किसानों के लिए।

बीमा कंपनियों को यह घाटे का सौदा लगती है, सरकार द्वारा 90 फीसदी की भारी सब्सिडी के बावजूद किसान शिकायत करते हैं कि उन्हें मिलने वाला हर्जाना बहुत कम है और लंबे अंतराल के बाद मिलता है। आम धारणा है कि बीमा कंपनियां अनुचित तरीके से सब्सिडी का लाभ ले रही हैं। यह आंशिक सच है। सन 2016 में योजना के शुरुआती वर्ष में मौसम के कारण फसल को नुकसान भी कम हुआ और इसलिए हर्जाना भी कम चुकाना पड़ा। इससे बीमाकर्ताओं को अच्छा मुनाफा हुआ। परंतु तब से हालात में बदलाव आया और 2018 में बारिश सामान्य से 9 फीसदी कम और 2019 में 10 फीसदी ज्यादा हुई। इससे कई राज्यों में फसल को भारी नुकसान पहुंचा। यही कारण है कि हर्जाने के दावे संग्रहीत प्रीमियम से अधिक हो गए। इसका असर बीमा कंपनियों के मुनाफे पर पड़ा और फसल बीमा उनके लिए आकर्षक नहीं रह गया।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के डिजाइन में कई कमियां हैं। इसमें बटाई पर खेती करने वाले किसानों की फसल के बीमा में बैंकों को अनिवार्य रूप से शामिल करना और नुकसान का आकलन हर किसान के लिए अलग से करने के बजाय एक तय इलाके में औसत फसल नुकसान के आधार पर करना शामिल है। बैंक प्राय: हर्जाने की राशि को बिना किसानों की सहमति के ऋण की राशि में समायोजित कर देते हैं। इसके चलते किसानों, बैंकों और बीमा कंपनियों के बीच भरोसा कमजोर पड़ रहा है। इसके अलावा केंद्र सरकार के साथ वित्तीय बोझ वहन करने में राज्य की समान भागीदारी की बात तथा फसल कटाई के प्रयोग के जरिये नुकसान का आकलन आदि भी दिक्कत पैदा कर रहे हैं। नुकसान के आकलन में तकनीक का प्रयोग भी वांछित तरीके से नहीं हो रहा है। इससे फसल नुकसान के आंकड़ों की विश्वसनीयता पर सवाल उठ रहे हैं और पुनर्भुगतान की राशि को अंतिम रूप देने में देर हो रही है। इतना ही नहीं राज्य अक्सर फंड में अपना हिस्सा देर से जारी करते हैं और वह भी किस्तों में। इसका असर नकदी की स्थिति और बीमा कंपनियों की भुगतान क्षमता पर पड़ता है। कई राज्यों ने सुनिश्चित राशि को बेहद कम रखा है जिससे लागत की भरपाई भी नहीं हो पाती। एक और बात यह है कि फसल बुवाई से लेकर कटाई तक कवरेज प्रदान करने वाली यह योजना मूल्य जोखिम की अनदेखी करती है जबकि वह किसानों के लिए अत्यंत आवश्यक है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का हश्र भी ऐसी पुरानी योजनाओं जैसा नहीं हो, इसके लिए इन मुद्दों को समुचित तरीके से हल करना आवश्यक है। भारतीय किसान खासकर छोटे और सीमांत किसान जो बुरी तरह कर्ज में डूबे हुए हैं, उन्हें फसल बीमा की सख्त आवश्यकता है ताकि वे अपने जोखिम का बचाव कर सकें। बीमारियों, कीट-पतंगों और सबसे बढ़कर जलवायु परिवर्तन के चलते ये दिक्कत बढ़ती जा रही है। अतिरंजित मौसम की घटनाएं पहले ही बढ़ गई हैं। चक्रवाती तूफान जो पहले कभी-कभार आया करते थे वे हाल के दिनों में देश के तटीय इलाकों में आम हो गए हैं। इन घटनाओं ने पहले से नकदी की किल्लत झेल रहे किसानों को और परेशानी में डाला है। जब तक उन्हें एक सहज फसल बीमा जैसा विश्वसनीय जोखिम प्रबंधन नहीं मिल जाता, उनकी निराशा बढ़ती जाएगी।

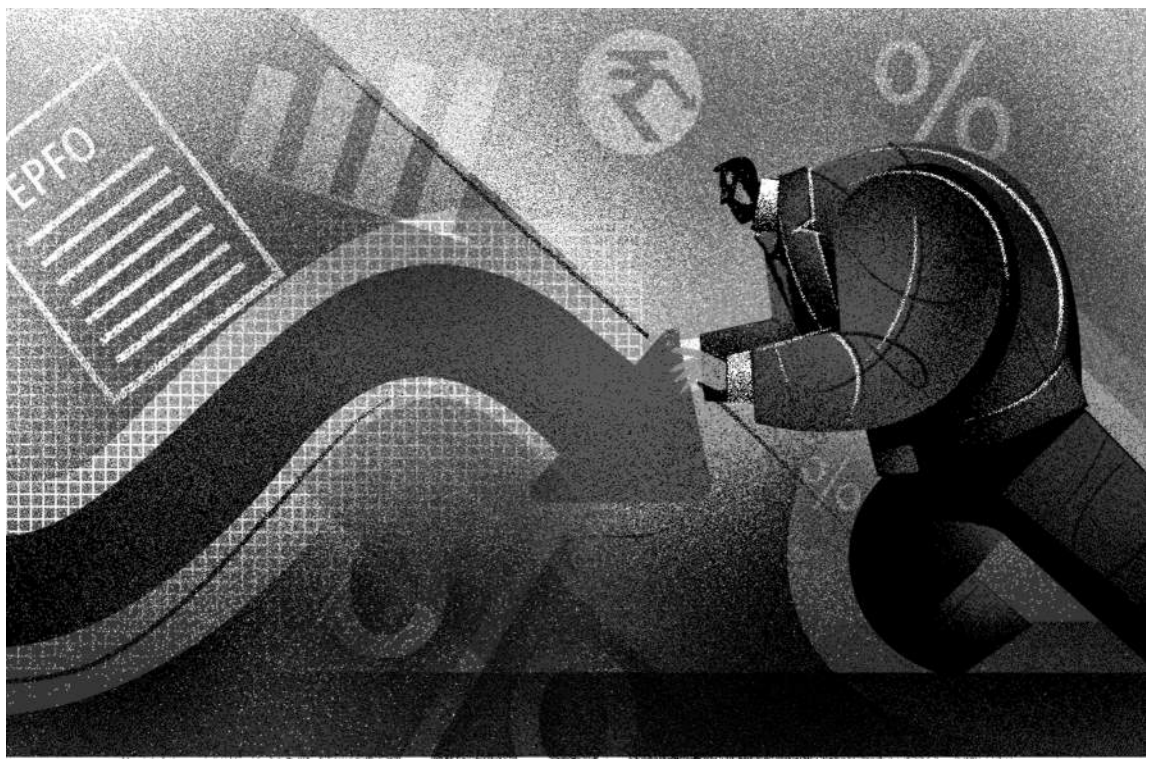

अजय मोहंती

आखिर क्या हो मौद्रिक नीति समिति की राह?

मुद्रास्फीति के ताजातरीन आंकड़े अर्थव्यवस्था के लिए किसी गंभीर चिंता का विषय नहीं हैं। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं अजय शाह

संसद और जनता के प्रति भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) की जवाबदेही के नजरिये से देखें तो खुदरा मुद्रास्फीति में साल दर साल आधार पर आ रहे बदलावों पर ध्यान देने की बात समझी जा सकती है। यह गैर तकनीकी क्षेत्र के लोगों के लिए भी समझने लायक है। शीर्ष मुद्रास्फीति जनवरी 2019 के 1.97 फीसदी के न्यूनतम स्तर से अक्टूबर 2019 में 4.62 फीसदी के ऊंचे स्तर पर पहुंच गई। अकेले अक्टूबर में यह मुद्रास्फीति के 4 फीसदी के तय लक्ष्य को पार कर गई। हालांकि यह भी ध्यान रहे कि आरबीआई को शीर्ष मुद्रास्फीति को 2 से 6 फीसदी के तय दायरे में रखना है।

कुछ लोग इस बात को लेकर चिंतित हैं कि मुद्रास्फीति में तेजी आई है और आरबीआई दरों में इजाफा कर सकता है। यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि एक महीने के लिए जब शीर्ष मुद्रास्फीति घटकर 1.97 फीसदी रह गई थी, तब यह 2 से 6 फीसदी के लक्षित दायरे से बाहर थी। जब मुद्रास्फीति का लक्ष्य 4 फीसदी है तो हमें प्रसन्न होना चाहिए कि हम लक्ष्य को भंग करने के बजाय उसके करीब आ गए।

गौरतलब है कि सितंबर में मुद्रास्फीति की दर 3.99 फीसदी थी। परंतु इस जवाबदेही से अलग हमें अब शीर्ष मुद्रास्फीति में माह दर माह आधार पर आने वाले बदलावों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इनका आकलन प्राय: मौसमी आधार पर समायोजित आंकड़ों के आधार पर किया जाता है। मौसमी आधार पर होने वाला समायोजन हमें व्यावहारिक समस्याओं मसलन खरीफ की उपज और दीवाली की मांग से इतर दृष्टि डालने में मदद करता है।

इन आंकड़ों पर से क्षणभंगुरता का परदा हटने के बाद हमें हकीकत देखने को मिलती है। साल दर साल आधार पर आंकी गई मुद्रास्फीति का प्रत्येक मूल्य, 12 मासिक मूल्यों के आकलन का औसत है। साल दर साल मुद्रास्फीति के ताजातरीन मूल्य को देखें तो अंदाजा लगता है कि बीते एक वर्ष में अर्थव्यवस्था में क्या कुछ होता रहा है। माह दर माह आधार पर मुद्रास्फीति पर नजर डालें तो पता चलता है कि अर्थव्यवस्था की तस्वीर कैसी रही है। सितंबर में माह दर माह आधार पर आधारित मुद्रास्फीति 8.84 फीसदी के उच्चतम स्तर पर रही थी। अक्टूबर में यह घटकर 7.09 फीसदी रह गई। किसी एक महीने के लिए 7.09 फीसदी का मूल्य अस्वाभाविक नहीं है। खासकर माह दर माह मुद्रास्फीति की दृष्टि से देखें तो। अतीत में कई बार अलहदा महीनों में 10 फीसदी तक की मुद्रास्फीति देखने को मिली है जबकि समग्र प्रदर्शन नियंत्रण में नजर आया और वह 2 से 6 फीसदी के तय दायरे के भीतर रहा।

मौद्रिक नीति समिति का काम कहीं अधिक गहराई से नजर डालने का है। मौद्रिक नीति निर्धारण का काम आसान नहीं है क्योंकि समिति के कदम और अर्थव्यवस्था पर उसके असर के बीच एक अंतराल होता है। हर मौद्रिक नीति समिति को भविष्य पर दृष्टि डालनी होती है। उसे उन कारकों की समझ होनी चाहिए जो उस वक्त सक्रिय हों और साथ ही अगले एक-दो वर्ष के दौरान मुद्रास्फीति की दशा और दिशा का भी अनुमान होना चाहिए। जब हम मौद्रिक नीति समिति के प्रदर्शन पर नजर डालते हैं तो यह समझना काफी आसान होता है कि समिति कब सही या गलत रही। इसके लिए संबंधित निर्णय के एक या दो वर्ष बाद मुद्रास्फीति के नतीजों पर दृष्टि डालना उचित होगा।

यदि हम आज के आर्थिक हालात पर नजर डालें, खासकर जीडीपी आंकड़ों से परे के हालात को देखे तो आज हम कारोबारी चक्र में बेहतर स्थिति में नहीं हैं। इस बात की संभावना काफी कम है कि क्षमता के इस्तेमाल में उभार आएगी और श्रम बाजार में किसी किस्म की कड़ाई आएगी जो मुद्रास्फीति को दोबारा गति प्रदान कर सके। ऐसे में भविष्य की तिथियों को लेकर मुद्रास्फीति का हमारा नजरिया अपेक्षाकृत नरम रहना चाहिए।

हकीकत यह है कि मौजूदा दौर की समस्या नीतिगत दरों का बहुत अधिक होना नहीं है। बल्कि दिक्कत यह है कि नीतिगत दरों का लाभ अधिकांश अर्थव्यवस्था को मिल ही नहीं पा रहा है। सामान्य परिस्थितियों में भारतीय बॉन्ड मुद्रा डेरिवेटिव का गठजोड़ खराब तरीके से काम करता है।

इससे मौद्रिक नीति का पारेषण कमजोर रहता है। इसके अलावा फिलहाल कई वित्तीय कंपनियों की हालत खराब है। ऐसे में वे अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं, उनका ध्यान कारोबारी अवसरों पर नहीं है। ऋण तक पहुंच और ऋण की कीमत की हकीकत की बात करें तो अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ी तादाद में शामिल लोगों के लिए यह उस तस्वीर से काफी अलग है जो उन्हें 91 दिन की ट्रेजरी बिल की दर में नजर आता है।

इसके साथ ही साथ समस्या का हल सरकार द्वारा ब्याज दरों में किए जाने वाले बदलाव में भी पूरी तरह निहित नहीं है। हमें इसके लिए कहीं अधिक गहराई से दृष्टि डालनी होगी। वित्तीय कंपनियों के मौजूदा व्यवहार के पीछे भी कारण हैं। जरूरत है वित्तीय क्षेत्र की नीतियों को लेकर गहरे ज्ञान और ऐसे वित्तीय सुधारों की जो वित्तीय क्षेत्र की दिक्कतों की जड़ों पर प्रहार करें।

उदाहरण के लिए प्रशासित ब्याज दर एक अहम समस्या है। जब मुद्रास्फीति 4 फीसदी है, और ईपीएफ या पीपीएफ की 8 या 9 फीसदी की ब्याज दर वास्तव में 4 से 5 फीसदी ही रहती है। ऐसे में जरूरत यह है कि नए माहौल में ईपीएफ या पीपीएफ की ब्याज दर को 5 फीसदी के नॉमिनल स्तर पर लाया जाए।

कुछ लोगों को लगता है कि अर्थव्यवस्था की कठिनाइयों के मद्देनजर अब वक्त आ गया है कि मुद्रास्फीति को लक्षित करना छोड़ दिया जाए। इस विषय में हमें उन चुनौतियों का ध्यान करना चाहिए जिनका सामना आर्थिक नीति निर्माताओं को अतीत में करना पड़ा है। उन्होंने भी उच्च मुद्रास्फीति का मुकाबला किया था। देश में आज जो तमाम समस्याएं हैं उनमें एक बड़ी राहत यह है कि हमें मुद्रास्फीति की तेजी का सामना नहीं करना पड़ता। जब आरबीआई की संपूर्ण संस्थागत शक्ति एक ही चीज पर केंद्रित हो, यानी शीर्ष मुद्रास्फीति को 4 फीसदी के आसपास रखने पर तो अनिश्चितता का एक तत्त्व तो अपने आप समाप्त हो जाता है।

लोगों का मान-सम्मान हासिल करने के लिए जरूरी है कि सही कदम उठाए जाएं। ऐसा बार-बार और लंबे समय तक करना होगा। मौजूदा दौर ऐसा नहीं है जब आर्थिक मसलों से छेड़छाड़ की जाए। हर बीतते वर्ष मौद्रिक नीति के साथ-साथ भरोसा भी मजबूत हो रहा है। हमें बस यहां बने रहना है, लाभ अपने आप हासिल होगा।

आर्थिक स्थिति को लेकर श्वेत पत्र जारी करने की जरूरत

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

देश की अर्थव्यवस्था ऐसे दौर से गुजर रही है जहां एक अदद अच्छी खबर तलाश करना मुश्किल है। आर्थिक वृद्धि में धीमापन है। निर्यात में गिरावट आ रही है, खुदरा मुद्रास्फीति बढ़ रही है, रोजगार बढ़ नहीं रहे हैं और बैंक ऋण की वृद्धि कम हुई है। बिजली का उपयोग कम हुआ है और यहां तक कि कर राजस्व में वृद्धि की गति भी धीमी हुई है। कर राजस्व की वृद्धि दर तो बजट में जताए गए अनुमान से काफी कम है। ऐसे में सरकार के लिए चालू वर्ष में राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को हासिल कर पाना मुश्किल है।

अर्थव्यवस्था में अहम कारक माने जाने वाले रुझान में भी गिरावट है। हालांकि सरकार ने बीते कुछ सप्ताह के दौरान आवश्यक कदम उठाए हैं। मसलन कॉर्पोरेशन कर की दर में कमी, आवास, अचल संपत्ति, वाहन और निर्यात क्षेत्र को गति प्रदान करने के लिए पैकेज की घोषणा आदि। लेकिन आर्थिक निराशा के दौर से उबरना शेष है।

सरकार को क्या करना चाहिए? बताया जाता है कि अर्थव्यवस्था में नई जान फूंकने के लिए अभी कई प्रस्ताव विचाराधीन हैं। इनमें बुनियादी क्षेत्र में अतिरिक्त निवेश, आयकर दरों में बदलाव, नीतिगत सुधार और निजीकरण शामिल हैं। इन उपायों से मदद मिलेगी लेकिन उनका असर तात्कालिक नहीं होगा। आर्थिक वृद्धि के आंकड़ों में सुधार सुनिश्चित करने के पहले जरूरी है कि अर्थव्यवस्था की गिरी हुई मनोदशा में सुधार किया जाए। सरकार कुछ उपायों की सहायता से मौजूदा मिजाज बदलने का प्रयास कर सकती है।

पहले बड़े कदम के रूप में सरकार को अर्थव्यवस्था की स्थिति पर श्वेत पत्र जारी करना चाहिए। सरकार तथा थिंकटैंक और रेटिंग एजेंसियों समेत तमाम अन्य संस्थानों के सदस्यों ने समस्या की प्रकृति और अर्थव्यवस्था की चुनौतियों को लेकर अलग-अलग टिप्पणी की है। बाजार और उद्योग जगत इस बात को लेकर स्पष्ट नहीं हैं कि उन्हें किस बात को स्वीकार करना चाहिए और किसे खारिज। अनिश्चितता ने भी अर्थव्यवस्था को लेकर नकारात्मक माहौल तैयार करने में मदद की है।

ऐसे में सरकार के लिए यह उचित समय है कि वह बताए कि देश की अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति और संभावनाएं क्या हैं? ऐसा दस्तावेज सहज तैयार किया जा सकता है। यदि यह काम किसी स्वतंत्र अर्थशास्त्री को सौंपा जाता है तो इसकी विश्वसनीयता में इजाफा होगा। वह अपनी रिपोर्ट सरकारी अर्थशास्त्रियों, विशेषज्ञों और वित्त मंत्रालय के अधिकारियों की सहायता से तैयार कर सकता है। वर्ष 2012 में विजय एल केलकर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को याद कीजिए। आज देश को वैसी ही एक रिपोर्ट की आवश्यकता है।

इससे सरकार से सरकार को अगले 11 सप्ताह में पेश किए जाने वाले बजट से जुड़े अनुमानों का प्रबंधन करने में आसानी होगी। उम्मीदें परवान पर हैं और यदि इन्हें अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति के अनुरूप रखा जाए तो बेहतर होगा। स्वतंत्र विशेषज्ञ की रिपोर्ट मौजूदा हालात सामने रखेगी और आगे की चुनौतियां भी। बजट से पहले पेश की जाने वाली आर्थिक समीक्षा चूंकि बजट से एक-दो दिन पहले आती है इसलिए वह ऐसे अनुमानों का प्रबंधन नहीं कर पाएगी।

रिपोर्ट सरकार के भीतर अपने वित्त से जुड़ी समस्याओं से निपटने का भरोसा पैदा करेगी। इस वर्ष अब तक राजस्व की आवक बताती है कि सरकार 2019-20 में 3.3 फीसदी के राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को शायद ही हासिल कर सके। चर्चा है कि सरकार राजकोषीय घाटे के संशोधित आंकड़े और संशोधित बजट से इतर उधारी प्रस्तुत कर सकती है।

अर्थव्यवस्था की स्थिति पर पर्चा सामने आने से ऐसी तमाम अटकलबाजी पर रोक लग जाएगी। ये आंकड़े बजट में जारी करने के बजाय बेहतर होगा कि बुरी खबर सामने लाने के लिए श्वेत पत्र का सहारा लिया जाए। इससे बजट में उन नीतियों पर ध्यान केंद्रित करने का अवसर मिलेगा जिनमें सुधार की जरूरत है। इसके साथ ही उसमें जरूरी नए व्यय पैकेज भी पेश किए जा सकेंगे। वित्त मंत्री वित्तीय तंत्र में उत्पन्न तनाव की बात स्वीकार करके तथा अर्थव्यवस्था की स्थिति सुधारने की बात दोहरा कर श्वेत पत्र के प्रयासों का पूरक प्रयास कर सकती हैं।

सरकार का दूसरा कदम यह होना चाहिए कि वह आर्थिक मंदी से मुंह न चुराए। कुछ माह पहले एक सरकारी सर्वेक्षण में ही दर्शाया गया था कि अर्थव्यवस्था में रोजगार वृद्धि में भारी गिरावट आई है। सरकार की पहली प्रतिक्रिया में कहा गया कि ये निष्कर्ष सर्वेक्षकों के प्रारंभिक नतीजे हैं। कुछ महीने बाद सरकार ने स्वीकार किया कि वह रिपोर्ट अंतिम थी।

कुछ दिन पहले सरकार ने उपभोक्ता व्यय पर अपने ही सर्वे को खारिज करने का निर्णय किया क्योंकि आंकड़ों में कुछ दिक्कत थी। इस व्यय में गिरावट आई थी। ऐसे कदम अर्थव्यवस्था में लोगों और उद्योग जगत के भरोसे को सीमित करते हैं। यदि आंकड़ों में दिक्कत है तो सर्वे को खारिज करने के बजाय इस कमी को दूर करने के प्रयास किए जा सकते हैं। आर्थिक मंदी से निपटने के लिए केवल निवेश बढ़ाना और नीतिगत सुधार करना पर्याप्त नहीं है। मंदी के स्वरूप को लेकर लोगों के साथ पारदर्शी संचार और इस दौरान उभरी चुनौतियों से निपटना भी अहम है। पारदर्शी संचार का लक्ष्य केवल तभी हासिल किया जा सकता है जबकि सरकार अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति पर श्वेत पत्र जारी करे और आर्थिक आंकड़ों तथा सर्वे के नतीजों को स्वीकार करे।

नरेंद्र मोदी सरकार के पहले कार्यकाल के दौरान तत्कालीन वित्त मंत्री अरुण जेटली ने अर्थव्यवस्था की स्थिति पर पत्र जारी करने का विचार इसलिए खारिज कर दिया था क्योंकि उनको आशंका थी कि इससे देश की अर्थव्यवस्था में निवेशकों का भरोसा कमजोर होगा। निवेशक अर्थव्यवस्था की स्थिति को लेकर पारदर्शिता पसंद करते हैं। आज वे ऐसे किसी भी कदम का स्वागत करेंगे जिसमें वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण अर्थव्यवस्था को लेकर श्वेत पत्र जारी करें।

कानाफूसी

लोस-रास टीवी चैनल का विलय

राज्य सभा टेलीविजन और लोक सभा टेलीविजन का शीघ्र ही विलय होने वाला है। देखने वाली बात यह होगी कि इन दोनों में से किसकी पहचान खत्म होगी। राज्य सभा टीवी की ब्रांड वैल्यू ज्यादा है जबकि लोकसभा टीवी के पास वित्तीय और प्रशासनिक शक्ति है। इसके साथ यह भी देखना होगा कि टीम की लगाम किसके हाथ में रहती है और नई व्यवस्था में मुख्य कार्याधिकारी की नियुक्ति कौन करेगा उपराष्ट्रपति या लोकसभा अध्यक्ष? गौरतलब है कि लोक सभा टीवी देश का पहला संसदीय चैनल है। इसका उद्घाटन तत्कालीन अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने जुलाई 2006 में किया था। इस चैनल का स्वामित्व एंव परिचालन दायित्व लोकसभा सचिवालय के पास है। राज्य सभा का स्वामित्व संसद के उच्च सदन के पास है। इसकी शुरुआत 2011 में हुई थी।

बुरे सपने सा जन्मदिन

मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री कमल नाथ का जन्मदिन विवादों से घिरा रहा। भोपाल में उनके जन्मदिन के मौके पर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के पदाधिकारियों द्वारा तोते उड़ाए जाने के बाद भोपाल के वन्यजीव कार्यकर्ता अजय दुबे ने इसकी आधिकारिक शिकायत कर दी। कमल नाथ के जन्मदिन पर जहां अधिकांश पार्टी कार्यकर्ताओं ने उनको बधाई दी, वहीं पूर्व कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी तथा उनकी बहिन और पार्टी महासचिव प्रियंका गांधी द्वारा उनको सोशल मीडिया पर बधाई नहीं देना भी चर्चा में रहा। इससे पहले स्थानीय अखबारों में दिए एक विज्ञापन में भी नाथ के बारे में कुछ विवादास्पद बातें छपी थीं। जिनके सामने आने के बाद पार्टी ने इस विज्ञापन पर से पल्ला झाड़ लिया था। विज्ञापन में लिखा था कि सन 1996 में उन्हें सुंदरलाल पटवा ने चुनाव में 'पटखनी' दी थी। यह भी कि सन 1993 में उनका नाम मुख्यमंत्री पद की दौड़ में आगे था लेकिन अर्जुन सिंह की अनुशंसा के बाद दिग्विजय सिंह को मुख्यमंत्री बना दिया गया।

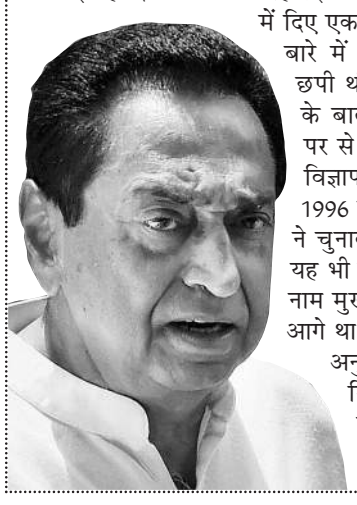

आपका पक्ष

शिक्षा को व्यवसाय नहीं बनने दें

दिल्ली उच्च न्यायालय ने दुकानों की तरह दिखने वाले स्कूलों के एक मामले में सुनवाई के दौरान कहा कि दिल्ली में ऐसे स्कूल कैसे चल रहे हैं। कक्षा एक से आठ तक के इन स्कूलों में खेल का मैदान नहीं है। पीठ ने एक स्कूल का फोटो देखने के बाद टिप्पणी की कि ये स्कूल हैं? वे दुकान की तरह दिखते हैं। वे कक्षा एक से आठ तक चलते हैं। क्या उन्हें खेल के मैदान की जरूरत नहीं है? दिल्ली सरकार क्या कर रही है। राजधानी दिल्ली में निजी स्कूलों की स्थिति उच्च न्यायालय की टिप्पणी से साफ हो जाता है। दिल्ली में गली-मोहल्ले में निजी स्कूल खोले गए हैं। प्ले स्कूल हर दूसरी गली में देखने को मिल जाएगा। अदालत ने यह भी पूछा कि ऐसे स्कूलों को बंद क्यों नहीं कर देते जबकि वहां खेल का मैदान भी नहीं है। इसे बंद करने के लिए फैसला लेने में यह कारण काफी है। आज ऐसे कई स्कूल हैं जिसमें खेल का मैदान तक नहीं है।

ऐसे में बच्चे कहां खेलेंगे और उनका शारीरिक विकास कैसे हो सकेगा। निजी स्कूलों ने शिक्षा को एक व्यवसाय बना दिया है। यहां बच्चे पढ़ने आते हैं ढेर सारा होमवर्क लेकर घर लौटते हैं। घर पर भी पढ़ाई करने लग जाते हैं जिससे शारीरिक कसरत नहीं हो पाती है। स्कूल में खेलने से बच्चों की शारीरिक कसरत हो जाती है लेकिन

आधारभूत सुविधाएं नहीं देने वाले निजी स्कूलों की पहचान कर उन्हें बंद कर देना चाहिए

जिस स्कूल में खेल का मैदान ही नहीं है वहां बच्चे कैसे खेल सकेंगे। कई स्कूल सरकारी पार्क के बगल में खुले हैं और पार्क की जमीन दिखा कर अपनी मान्यता बचाए हुए हैं। स्कूल पार्क की देखभाल तथा साफ सफाई का जिम्मा ले लेता है जिससे उसे मान्यता मिल जाती है। देश में शिक्षा एक शुद्ध मुनाफा वाला व्यवसाय नहीं बने इसके लिए सरकार को कठोर कदम उठाने होंगे। शिक्षा का अधिकार के तहत सरकार को सरकारी स्कूलों की संख्या बढ़ानी होगी। स्कूलों की संख्या बढ़ेगी तभी बच्चे वहां पढ़ सकेंगे। अगर स्कूलों की संख्या नहीं बढ़ती है तो निजी स्कूल इसका फायदा उठाएंगे तथा शिक्षा के नाम पर मोटी रकम भी वसूलेंगे।

आनंद कुमार, नई दिल्ली

कश्मीर घाटी में अमन व चैन की बारी

जम्मू कश्मीर को केंद्र शासित प्रदेश का दर्जा दिए जाने के बाद आतंकवादी घटनाएं कम हुई हैं। कश्मीर में सेना पर पथराव की घटनाओं में भी कमी आई है। हालांकि कुछ आतंकवादी घटनाएं हुई हैं लेकिन सेना ने समय रहते इसे संभाल लिया है। इसकी मुख्य वजह घाटी में मोबाइल फोन तथा इंटरनेट पर पाबंदी लगाना रहा है। सोशल मीडिया का दुरुपयोग कर आतंकवादी घाटी के भोले भाले लोगों को बहकाते हैं। आतंकवादी लोगों से सेना पर पत्थर फेंकने को मजबूर करते हैं। इससे दुनिया को लगता है कि घाटी के लोग भारत सरकार का विरोध कर रहे हैं। लेकिन यह अधूरा सच ही लगता है। आतंकवादी कुछ लोगों को बहलाकर सरकार के खिलाफ आंदोलन करने पर मजबूर करते हैं जिसे देखने वाला यही समझता है कि घाटी के सभी लोग सरकार का बहिष्कार कर रहे हैं। घाटी में पाबंदियों के बाद शांति का माहौल है। धीरे-धीरे स्थिति सामान्य हो रही है और आने वाले दिनों में यह वापस भारत का स्वर्ग हो जाएगा। हमें घाटी के लोगों को भरोसा दिलाने की जरूरत है कि उनके हर सुख दुख में देश उनके साथ है।

कीर्ति कुमारी, नोएडा

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।